भारतीय क्षितिज पर उदित महापुरुषों की महान परम्परा में तीर्थंकर महावीर एक ऐसे महामानव थे जिन्होंने प्रचलित परम्परागत मान्यताओं से हटकर उच्चतम मानवीय मूल्यों की स्थापना की। उनसे पूर्व का समाज परम्परागत तथा कृत्रिम मूल्यों पर आधारित होने से विषमता, पाखण्ड, अन्धविश्वास, रूढ़िग्रस्तता तथा संकुचित भावनाओं के प्रभाव के कारण जर्जरित होता जा रहा था। चन्द-उच्च सत्ता, प्रतिष्ठा एवम् अधिकार प्राप्त शक्तिशाली व्यक्तियों का सम्पूर्ण मानव समाज व्यवस्था पर नियन्त्रण था। इसे स्थिर रखने के उद्देश्य से उन्होंने समाज में ऐसी दूषित व्यवस्था को जन्म दे रखा था जिसमें मानवीय मूल्यों को तिलांजलि दे दी गई थी।

30 मार्च, ई. पू. 599 (चैत्र शुक्ला त्रयोदशी) को वैशाली के राजपरिवार में जन्मे राजकुमार बर्द्धमान ने तत्कालीन परिस्थितियों से प्रेरणा ग्रहण कर, श्रमण तीर्थंकरों की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए अहिंसा

मानव धर्म के प्रणेता तीर्थंकर महावीर

सरदारसिंह चोरडिया

को समतामयी भूमिका में प्रतिष्ठित कर उस युग की चिन्तनधारा को सर्वत्र चुनौती दी। शास्वत एवम् सर्वांगीण दर्शन के माध्यम से उन्होंने तत्कालीन समाज में व्याप्त दोषपूर्ण व्यवस्था के विभिन्न पक्षों, ईश्वरवाद, पाखण्डवाद, बहुदेवोपासना, कर्मकाण्ड, लोकभाषा का अभाव, नरबलि, पशुबलि तथा नारी जाति के साथ दुर्व्यवहार जैसी कुप्रथाओं एवं व्यवस्थाओं से ग्रस्त सामाजिक व्यवस्था पर प्रहार कर मानवीय जीवन के मौलिक पक्ष को प्रस्तुत कर मानवीय मूल्यों की स्थापना की।

वर्ण व्यवस्था का खण्डन :

वर्द्धमान महावीर को जिस व्यवस्था के विरुद्ध सर्वाधिक संघर्ष करना पड़ा, वह थी तत्कालीन समाज में प्रचलित वर्ण व्यवस्था, जो जन्मना जाति के सिद्धान्त पर आधारित होने से विषमता की प्रमुख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घटक थी। ब्राह्मण जन्मना उच्च एवं शूद्र जन्मना तुच्छ, इस मान्यता पर आधारित व्यवस्था ने मानव-मानव में बहुत बड़ा भेद पैदा कर दिया था। महावीर ने इस व्यवस्था का तर्कसंगत खण्डन कर तत्कालीन समाज को आन्दोलित कर दिया।

तीर्थंकर महावीर ने सभी वर्ण और जाति के लोगों को समान मानव कहा। वर्द्धमान महावीर स्वयं जन्म-जात जैन नहीं थे। जन्म से वे क्षत्रिय वर्ण के कुल में पैदा हुए थे। उन्होंने आत्मविजय द्वारा द्वेष व मोह का नाश कर आत्मा को जीता, इस कारण वे जिन कहलाए। उनके समवशरण के द्वार न केवल मानव मात्र को वरन प्राणीमात्र को खुले थे। उसमें सभी मिलजुलकर बैठते थे। उन्होंने बारह वर्ष की कठोर तपस्या के पश्चात् निरंतर तीस वर्ष तक भ्रमण कर ज्ञानियों, अल्पज्ञों, उच्च एवं दलितों तथा छूत एवम् अछूतों को जैन धर्म में दीक्षित कर समाज में प्रचलित अन्याय, अत्याचार, कुप्रथा एवं दुराचार के विरुद्ध आवाज उठायी और सन्मार्ग दिखाया। उनके संघ में भी सभी वर्ग व जाति के लोग थे, उनके गणधर इन्द्रभूति आदि ब्राह्मण कुलोत्पन्न तथा अनेकों श्रावक-श्राविकाऐं वैश्य कुल की थीं। उनके शिष्यों में सकड़ाल कुम्हार, अर्जुन माली, कंसा डाकू, अनुरक्त भद्रा नामक राज कर्मचारी की बेटी तथा पापी और नीच समझे जानेवाले लोग भी थे।

दलितोद्धार :

प्राणीमात्र के मध्य समानता स्थापना का विचार देकर उन्होंने मानव समाज में व्याप्त भय, कायरता, दुराग्रह पाखण्ड एवं अन्धविश्वास को दूर किया तथा पतितों एवं दीनों को गले लगाया और धार्मिक जड़ता तथा अन्ध श्रद्धा को तोड़कर जातिभेद व सामाजिक वैषम्य के विरुद्ध लोकमत जाग्रत किया तथा सुदूर क्षेत्रों में अपने उपदेश दे, जन जागरण कर सामाजिक क्रांति का सूत्रपात किया। दलितों एवं शोषितों के प्रति अन्याय से व्यथित महावीर ने उनके उद्धार को अपना एक प्रमुख लक्ष्य बनाया। वे जहाँ भी गए, उन्होंने ऐसे लोगों को प्राथमिकता दी। उन्होंने दृढ़ संकल्प हो, शूद्रों एवं एवं नारी जाति के लोगों को अपने धर्म में दीक्षित किया। हरिकेशी चांडाल, सद्दालपुत्त कुम्भकार और दासी चन्दबाला (स्त्री) के लिए उन्होंने धर्म के द्वार खोल दिए। विहार करते समय एक बार पोलासपुर गाँव के भ्रमण में दौरान सकड़ाल कुम्हार की प्रार्थना पर वे सहर्ष उसके यहाँ ठहरे। इस प्रकार दलितों एवं शोषितों को समाज में समान एवं सम्मानपूर्ण स्थान दिलाने के लिए कटिबद्ध वर्द्धमान महावीर ने इस दिशा में नवीन क्रांति को जन्म दे, उनके लिए आध्यात्मिक साधना के द्वार खोल दिए।

अवतारवाद का खण्डन :

तीर्थंकर महावीर ने पूर्व प्रचलित इस धारणा का, कि—"सृष्टि निर्माता ईश्वर ही सबका भाग्य विधाता है" खण्डन किया। उनसे पूर्व धर्मगुरू इस धारणा पर ही बल देते थे, उन्होंने, इसकी व्याख्याओं में इसे और जटिल बनाते हुए "राजा को ईश्वर का अवतार" तथा "संस्कृत को देवताओं की भाषा" भी निरूपित कर दिया, और यह विश्वास जाग्रत एवं पैदा किया कि मनुष्य का कल्याण इस सृष्टि निर्माता ईश्वर की पूजा अर्चना से ही सम्भव है। राजा, पुरोहित एवं पंडित स्वयं इस ईश्वर के प्रतीक एवं मध्यस्थ बन गए और उन्होंने ईश्वर की पूजा अर्चना को भी जाति तथा वर्ण विशेष का ही अधिकार घोषित कर दिया। इस सारी व्यवस्था ने समाज को बुरी तरह जकड़ रखा था। महावीर ने इन बन्धनों को तोड़ा और कहा कि सृष्टि का कोई निर्माता नहीं है, वह अनादि और अनंत है। यह दुनियाँ किसी एक ईश्वर के भरोसे नहीं चल रही है। उन्होंने बुद्धिवादी कर्मवाद की धारणा प्रचलित कर हर व्यक्ति को लोकभाषा में मोक्षमार्ग ढूंढ़ने का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन्देश दिया। इस धारणा का कि राजा ईश्वर का अवतार है, संस्कृत देवताओं की भाषा है, और उसमें लिखे कुछ ग्रन्थ ईश्वरीय है, खण्डन कर उन्होंने कहा कि कोई भी ग्रन्थ ईश्वरीय नहीं है, वे मनुष्य की ही कृति हैं, मनुष्य पहले आया और ग्रन्थ बाद में। राजा देव नहीं, न ही वह ईश्वर का अवतार हैं। महावीर ने कहा कि "राजा मनुष्य है, उसे देवता मत कहो, एक सम्पन्न मनुष्य कहो।"

देवों पर मानव की महानता :

इस प्रकार तीर्थंकर महावीर ने समकालीन मानव को मानव माना, तथा स्वयं को भी मानव ही कहा। यही कारण है कि अन्य धर्मों की तरह जैन धर्म तीर्थंकरों के साथ ईश्वरीय अवतार की धारणा नहीं जुड़ी है। वे तप व संयम द्वारा कर्मों को क्षय करके, आत्मा को साधना से पहचान कर, आत्मस्वभाव के रमण करने की प्रक्रिया से, तीर्थंकर बने। उन्होंने चरित्र की आवश्यकता तथा पंच महाव्रत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह के पालन पर बल दिया। उन्होंने स्पष्ट कहा कि कोई ईश्वरीय अवतार नहीं, सभी प्राणी समान आत्मा को ग्रहण करते हैं, देव मानव से उच्च नहीं, वरन् उनके आधीन हैं, जैन वाङ्मय में ऐसे अनेको उदाहरण भरे पड़े हैं जिनमें देवों द्वारा महामानवों की शरण व स्वागत सत्कार में उपस्थित होने के प्रसंग हैं, जबकि ऐसा एक भी उदाहरण नहीं जिसमें मोक्ष प्राप्ति हेतु ईश्वर या देवताओं या उनके अवतारों की पूजा अर्चना का मार्ग अपनाया हो। उनने अनुसार प्रत्येक मानव सत्कर्मों के द्वारा दुष्कर्मों को क्षय कर, आत्मसाधना के द्वारा ही मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। तीर्थंकर महावीर करुणा और संवेदना के प्रतीक थे। उन्होंने कहा कि मनुष्य की सत्ता सर्वोच्च है। प्रत्येक आत्मा का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है, उसमें अनन्त शक्ति विद्यमान है। इस प्रकार तीर्थंकर महावीर ने देवों पर मानव की महानता सिद्ध की।

मनुष्य स्वयं भाग्यविधाता :

तीर्थंकर महावीर ने भाग्यवाद का खण्डन कर कहा कि मनुष्य स्वयं ही अपने भाग्य का विधाता है, कोई अन्य शक्ति न तो उसके भाग्य को निर्धारित ही करती है, न ही उसके कर्मों को संचालित। मनुष्य भाग्य या कर्म के यंत्र का पुर्जा नहीं है, भाग्य मनुष्य को नहीं बनाता, मनुष्य स्वयं ही अपने भाग्य का निर्माण करता है, वह स्वयं ही अपना भाग्य विधाता है। वह स्वयं ही अपने सुख दुःख का कर्त्ता है।

पुरुषार्थ पर बल :

सुख प्राप्ति के लिए तीर्थंकर महावीर ने पुरुषार्थ का सन्देश दे सहजता और स्वाभाविकता पर बल दिया उन्होंने कहा कि–"तुम सुख-कहाँ ढूढ़ते हो, वह तो तुममें ही स्थित है, सुख बाहर नहीं भीतर है। जिस राग द्वेष, अपने पराए में तुम सुख दुःख की कल्पना कर रहे हो, परिग्रह समृद्धि में सुख खोज रहे हो, वह सुख कहाँ है? वहाँ तो दुःख का अपरम्पार पारावार लहरा रहा है। "सुख अन्तः में स्थित है, जिसे पुरुषार्थ से ही प्राप्त किया जा सकता है।"

कर्मवाद :

यही कारण है कि अपने जीवन दर्शन में तीर्थंकर महावीर ने कर्मवाद के मूलमंत्र का प्रयोग किया। उन्होंने कहा कि "सिर मुड़ाने मात्र से कोई श्रमण नहीं हो जाता, ॐ रटने मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं होता, वनवास भोगने से कोई मुनि नहीं बन जाता, बल्कि समता से ही व्यक्ति श्रमण होता है, ब्रह्मचर्य से ही ब्राह्मण, ज्ञान से ही मुनि तथा तप से ही तपस्वी। आदमी क्षत्रिय, ब्राह्मण वैश्य, शूद्र सिर्फ अपने कार्य से बनता है।"

मनुष्य जन्म से नहीं कर्म से महान् है :

तीर्थंकर महावीर ने कर्मवाद की धारणा दे कर यह कहा कि "मनुष्य जन्म से नहीं कर्म से महान होता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है।" जाति विशेष को ही मोक्ष की प्राप्ति का अधिकार है इस धारणा का खण्डन कर उन्होंने कहा कि धर्म के पथ का अनुशरण जन्म द्वारा निर्धारित न होकर उसके भावनारूपी कर्म पर आश्रित होता है। जैसा क्रिया कर्म होगा, वैसा ही उसका भोग होगा। जीवात्मा स्वयं कर्म करता है और स्वयं ही फल भोगता है और स्वयं ही विश्व में भ्रमण करता है। तथा स्वयं बन्धन से सदा के लिए मुक्त भी हो जाता है। जैसा कर्म होगा, वैसा मिलेगा। जब तक पूर्व कर्मों का क्षय नहीं होता तब तक मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता।

शुद्ध आत्मा ही परमात्मा :

मोक्ष प्राप्ति के लिए महावीर ने आत्मशुद्धि पर बल दिया। "शुद्ध आत्मा ही परमात्मा की धारणा दे उन्होंने कहा कि ईश्वरत्व प्राप्त करने के साधनों पर किसी वर्ग या व्यक्ति विशेष का अधिकार नहीं है। वह तो स्वयं में स्वतन्त्र, मुक्त, निर्लेप और निर्विकार है। हर व्यक्ति चाहे वह किसी जाति, वर्ग, धर्म या लिंग का हो, मन की शुद्धता और आचरण की पवित्रता के बल पर उसे प्राप्त कर सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि वह अपने कषायों, क्रोध-मान-मोह-लोभ को त्याग दें। मनुष्य को मोक्ष प्राप्ति के लिए अपनी तृष्णा से, वैर से, क्रोध से, मोह से, विलास, अहंकार एवं प्रमाद से मुक्ति प्राप्त करना आवश्यक है। इनसे मुक्ति प्राप्त आत्मा ही शुद्ध आत्मा है और वही परमात्मा है।

ज्ञान एवं कर्म का सवन्वय :

इसके लिए महावीर ने ज्ञान और कर्म के समन्वय पर बल दिया। मोक्ष प्राप्ति के लिए उन्होंने सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान एवं सम्यक चरित्र रूपी रत्नत्रय के प्रमाणबद्ध समन्वय पर बल दिया। अकेला ज्ञान, अकेला दर्शन अथवा अकेला चरित्र ही मनुष्य को दुःख मुक्ति की ओर नहीं ले जा सकता। इसके लिए ज्ञान, दर्शन और आचरण का समन्वय आवश्यक है। ज्ञान हीन कर्म और कर्महीन ज्ञान दोनों ही व्यर्थ हैं। ज्ञान सत्य का आचरण और आचरिक सत्य का ज्ञान दोनों ही आवश्यक हैं।

समन्वयवादी दर्शन :

महावीर का दर्शन अत्याधिक व्यापक है जिसमें समन्वयवाद पर बल दिया गया है। अनेकान्त एवं स्याद्वाद दर्शन का सिद्धान्त जैन दर्शन की ऐसी मौलिक उपलब्धि है जिसने दर्शन शास्त्र के जगत् में ज्ञान एवं विकास के नए द्वार खोल दिए हैं, तथा विश्व भर के चिन्तकों को नई दिशा दी है।

इस प्रकार तीर्थंकर महावीर ने ऐसे मानवधर्म की स्थापना की जिसने प्राणीमात्र की मुक्ति का द्वार खोल दिया और एक ऐसे जीवन दर्शन की स्थापना की जिसने मानव जगत को नई दिशा तो दी ही, साथ ही मानव समाज में उच्चतम मानवीय मूल्यों की स्थापना की, जो कि तीर्थंकर महावीर के मानवधर्म की महत्व पूर्ण उपलब्धि है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org